श्री श्री माँ आनन्दमयी दिव्यालोकवार्ता
(1896-1982)

"पूज्य माँ मेरी दृष्टि में एक व्यक्ति नहीं, परन्तु एक शक्ति हैं। धरती पर आयी हुई कोई विशिष्ट व्यवस्था हों । केवल उन्हीं में यह तीन बातें एक साथ हो सकती हैं, जो माँ में मुझे दिखाई देती हैं-1.अवधूत, 2.अद्‌भुत,3.अनुभूत।"

-संत मोरारी बापू।

श्री श्री माँ आनन्दमयी

श्री श्री माँ आनन्दमयी-दिव्यालोकवार्ता

"भाग्य से मनुष्य जन्म। उनकी कृपा से, सुकृति के फल से ही यह जन्म। मनुष्य जन्म दुर्लभ हैं इसीलिए मनुष्य जन्म में मनुष्यत्व की जागृति की दिशा ग्रहण करनी चाहिए। मानव को सच्ची मानवता का यह संदेश मिला है श्री श्री माता आनन्दमयी के श्री मुखारविन्द से, जिनकी जन्मशती मनाने के लिए आज देश-विदेश में हर्षोल्लास की सूचना हो रही हैं।

भारत की धरती पर प्रेम करुणा और ज्ञान का चिन्मय बीज अनादि काल का बोया हुआ ही हैं समय समय पर यह विराट वृक्ष के रूप में उभर आता है, जिसकी सघन सुशीतल छाया में आकर विषयतापदग्ध संसार-चक्र में फँसे अजस्त्र प्राणियों को सुखद निर्मल शान्ति प्राप्त होती हैं युग युग से यही परम्परा चली आ रही हैं भारत की आत्मा इससे परिचित हैं अत: सर्पिल पिच्छिल मार्ग में चलते हुए निरन्तर ठोकर खाते हुए उसे जब "अमर आत्मा अमर पन्थी स्वयम्" का महावाक्य सुनाई पड़ता है तो वह ठिठक कर वहीं खड़ा हो जाता है, उस अमर वाणी का निरन्तर श्रवण करने के लिए। विंश शताब्दी का भारत इसी अमर वाणी को सुनने के लिए एकत्रित हुआ था विश्वविभूति श्री श्री माँ आनन्दमयी के श्री चरणों में।

आज से प्राय: शताब्दी पूर्व सन् 1896 में पूर्व बंगाल के त्रिपुरा जिले के अन्तर्गत खेउड़ा नामक गाँव में 30 अप्रैल को श्रीयुत विपिनबिहारी भट्टाचार्य के पवित्र गृह में माता मोक्षदा सुन्दरी देवी के निर्मल क्रोड़ में माँ आनन्दमयी का आविर्भाव हुआ था। अत: माता पिता ने नाम रखा निर्मला सुन्दरी देवी।

जन्म के तेरहवें दिन नवजात शिशु को देखने एक व्यक्ति आये थे माताजी ने बड़े होने पर एक दिन अपनी माँ से कहा- मेरे जन्म के तेरहवें दिन श्री नन्दन चक्रवर्ती आये थे? यद्यपि उनकी माँ मोक्षदा सुन्दरी देवी इस प्रसंग को भूल गयी थी। उक्त व्यक्ति से पूछने पर उन्होंने कहा कि वे तेरहवें दिन सद्य:जात बालिका को देखने गये थे।

भक्तों का प्रश्न हुआ-"माँ आप जन्म के समय रोयी नहीं ?" माताजी का सरल उत्तर था-"रोती क्यों , मैं तो उस समय कुटिया के छेद से नीम और आम का पेड़ देख रही थी।"

म.म. श्री गोपीनाथ कविराज जी ने माताजी के सम्बंध में एक जगह कहा है-"क्षणभर के लिए भी स्वरूपज्ञान की विच्युति उनकी नहीं हुई। वह अनादि काल से क्या हैं और अनन्त काल तक क्या रहेंगी इस सम्बन्ध में वे सर्वदा ही सजग हैं।"

माताजी की स्कूली पढ़ाई गाँव के स्कूल में ही हुई थी। वह भी 2-3 महीने ही। बचपन में माँ को सब भोली भाली सीधी बच्ची कहते थे एक दिन माँ तालाब से जल भरी गगरी कमर पर रख लाईं और टेढ़ी होकर खड़ी हो गयीं एवं अपनी माँ से कहने

लगीं-"आप लोग मुझे सीधी-सीधी कहते हो न। यह देखो मैं टेढ़ी हुई हूँ।"

12 वर्ष दस महीने की आयु में ब्राह्मण परिवार के श्री रमणीमोहन चक्रवर्ती से माताजी का विवाह हुआ था। यह रमणीमोहन ही बाद में बाबा भोलानाथ जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गृहस्थाश्रम के अनुसार माताजी हर समय घूँघट डालकर ही सब काम-काज किया करती थीं। यही समय था जब माताजी को काम करते करते समाधि लग जाती थी और उनका काम रुक जाता था। कभी-कभी चूल्हे पर चढ़ाई सब्जी जल जाती थी, यों तो भावावस्था में माँ कभी घण्टों पड़ी रहती थीं। इस सबके होने पर भी माँ सबकी अत्यन्त प्रिय थीं। आस-पड़ोस की स्त्रियाँ "खुशी की माँ" के नाम से उन्हें पुकारती थीं।

भोलानाथ जी के कार्य क्षेत्र बाजितपुर तथा शाहबाग में रहते हुए माताजी के श्री शरीर में नानाविध साधन-क्रियाओं का प्रकाश हुआ था।

सिद्धेश्वरी में माताजी के इस दिव्य आनन्दमय स्वरूप को देखकर ही सरकारी कृषि विभाग के उच्चपदस्थ कर्मी श्री ज्योतिषचन्द्र राय ने कहा था-"आज से आप को हम सब 'श्री श्री माँ आनन्दमयी' के नाम से पुकारेंगे" प्रचलित हुआ माँ का "आनन्दमयी" नाम। यह सन् 1925 की बात है।

1926 में माँ के पास भक्तों का आवागमन प्रारम्भ हुआ। इनमें माँ की नित्यलीला सहचरी एवं अनन्य सेविका श्री गुरुप्रिया देवी का नाम अग्रगण्य है जो अपने पिता डा० शशांक मोहन मुकर्जी के साथ माँ के दर्शनार्थ आयी थीं और दर्शन मात्र से ही माँ की हो गयी।

आपने अपनी श्री श्री माँ आनन्दमयी नामक पुस्तक के तीसरे भाग में एक जगह माँ के महिमामय दिव्य चरित्र का उल्लेख करते हुए इस प्रकार लिखा है-"माँ के जीवन के सम्बन्ध में आलोचना करने पर देखा जाता है कि सब समय उन्होंने पूर्णभाव से लीला की हैं जब कन्या की भूमिका निभायी तब पिता माता की एकान्त अनुगता थीं, उनको ही गुरु के रूप में मानती थीं। आस - पड़ोस, बालिका माँ पर न्योछावर था। किसी की असुविधा होने पर माँ उनके घर जाकर उनकी रसोई आदि कार्य कर देती थीं। सभी कार्य में उनकी निपुणता प्रकाशित होती थी।"

माता के आदेश पालन की एक छोटी सी घटना इस प्रकार है:-बालिका माँ एक बार एक पत्थर की कटोरी धोने तालाब पर गयीं, जाते समय माता ने कहा, "हो सके तो तोड़ कर लाना" यद्यपि यह वाक्य सावधानी के लिए कहा गया था, पर बालिका माँ के हाथों से कटोरी गिर गयी और टूट गयी। पर उन्होंने सभी टूटे टुकड़ों को उठाया और भलीभाँति धोकर उन्हें माता के पास ले आयीं। माता ने कहा -"यह क्या", बालिका माँ बोली, "कटोरी मेरे हाथों से छूट कर गिर गयी थी। आपने कहा

था ले आना अत: सभी टुकड़ों को ले आयी हूँ। माता क्रोध क्या करतीं।

जब तक पिता थे तब तक पिता के पास कन्या ही थीं। कहीं आते जाते पिता सामने रहें तो दोनों हाथों से पैर छूकर मस्तक स्पर्श कर प्रणाम करती थीं, जब वधू की भूमिका में तब जेठ, जेठानी एवं उनकी, उनके बालक बालिकाओं की पूरी सेवा की, अपनी और तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

जब गृहणी बनीं तब पति की सेवा ही परम धर्म माना। भोलानाथ जी का आदेश माताजी ने इस प्रकार पालन किया है जो किसी मानवी के द्वारा सम्भव नहीं हैं माताजी खूब कौड़ी (छोटे-छोटे शंख) खेलती थीं तब माँ चित्रालय विद्याकूट में थीं। एकबार भोलानाथ जी ने इस विषय में अपनी असहमति बतायी, माँ ने वह खेलना सदा के लिए छोड़ दिया। यद्यपि वे बालिका ही थीं। सहेलियों के कहने पर भी कभी नहीं खेलीं।

बाजितपुर में जब साधना की क्रिया प्रारम्भ हुई तब भी भोलानाथ जी की सेवा में त्रुटि नहीं होती थी। उनको खिलाकर ऑफिस भेजने तक ही उनका कर्त्तव्य सीमित नहीं था। शाम को ऑफिस से लौटकर मुँह हाथ धोएं उसके लिए जल और अँगोछे को भी ठीक स्थान पर रख देती थीं। तत्पश्चात् माताजी अपने भाव में बैठती थीं। इधर संध्या होते ही पुन: उठकर गृहवधू के अनुकूल कर्त्तव्य, धूप-दीप देकर रन्धनादि की व्यवस्था करती थीं। भोजन के अनन्तर पान तम्बाकू आदि सब विधिवत् रख कर भोलानाथ जी के विश्राम करने पर ही माताजी अपने कार्य में बैठती थीं। कभी-कभी आसन से उठते-उठते रात्रि शेष हो जाती थी, एवं तब ही थोड़ा सा नाम मात्र आहार करती थीं।

गार्हस्थ्य धर्म की निपुणता में देखा जाता है कि माँ ने गृहिणी के कर्तव्यों का निपुणता से पालन किया । माताजी के द्वारा पकाये हुए भोजन की कुछ अलग ही विशेषता होती थी।

माताजी अपने हाथों से अचार, अमावट आदि डाला करती थी। माँ के हाथों के बने लेस, गलीचे आदि आज भी सुरक्षित हैं। माँ ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार चरखे से सूत भी काता है। ननद, देवर सभी के लिए वह रहस्यमयी, ममतामयी भ्रातृजाया थी। वे माँ को देवी रूप से मानतक थे। यहा माँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सब कुछ करते हुए माँ नित्य अखण्ड भावघन स्वरूप में विराजमान रहती थीं। माँ के श्रीमुख की वाणी इस प्रकार है- 'तुम लोगो के भावानुयायी ही इस शरीर में स्वत: ही परिवर्तन हो जाता है ।इसमें अपनी कोई इच्छा या कर्तव्य नहीं है।'

'जब जो काम करोगे, वो मन प्राण से करना। वह काम छोटा हो या बडा, उससे कुछ आता जाता नहीं।'

भोलानाथ जी जब शाहबाग में नौकरी करते थे तब रायबहादुर योगेश घोष के घर से कोई आ जाये तो माँ उनका अतिशय सत्कार करती थीं। कारण तब योगेश

बाबू भोलानाथ जी के कार्यक्षेत्र में मालिक स्थानीय थे। नीति के पूर्णतः पालन का अनुपम दृष्टान्त हमें माताजी के दिव्य चरित्र में दृष्टिगोचर होता है। माँ कहती हैं - ''एक नीतिज्ञ शिक्षक की शिक्षा से बहुत लोगो का सत् जीवन गठित होना सम्भव है, एक बीज से जैसे अनन्त वृक्ष होते हैं, एक नीतिज्ञ शिक्षक द्वारा वैसे ही बहुत सत् मनुष्य की सृष्टि सम्भव है।''

कालान्तर में माताजी के पास सभी धर्मो तथा सभी वर्गों के लोगों को आते देखा गया है। केवल इतना ही नहीं उनकी अपनी-अपनी धर्म-विषयक शंकाओं का समाधान भी माँ से प्राप्त हुआ तथा वे माँ के प्रति अत्यन्त आकर्षित हो जाते थे। पंडित गोपीनाथ कविराज जी कहते थे- ''श्री श्री माँ के पास जब किसी भी सम्प्रदाय या धर्मविशेष के व्यक्ति आते हैं तब माताजी पूर्णतया उन्हीं की दृष्टि से उनसे बातचीत करती हैं। अतः सभी को माताजी की बातों में अपना समाधान प्राप्त हो जाता है। सभी यह समझते हैं कि माताजी उन्हीं के सम्प्रदाय की पृष्ठपोषक हैं।''

उक्त बातों से स्पष्ट होता है कि किसी धर्मविशेष की नहीं, साधना के मार्ग में होनेवाली सभी क्रियाओं का प्रकाश माँ के शरीर में हुआ था। अतः ढाका की नवाबजादी प्यारी बानो माताजी से धर्म विषयक आलोचना कर तथा उनके श्रीमुख से कुरान के शब्दों का उच्चारण सुन अत्यन्त हर्षित हुई थीं। सैयद हाफिज मक्का में फकीर का आदेश प्राप्त करते हैं ''तुमको मार्ग दिखाने वाली माताजी भारत में मिलेंगी।'' माता जी का दर्शन कर वे अभिभूत हो जाते हैं। बौद्ध भिक्षु श्री लॉबसाग रिग्दल कहते हैं। - ''मै धर्मशाला में गया। दलाई लामा के दर्शन कर मुझे यह लगा कि ये ही मेरे पथ-प्रदर्शक हैं जो यह कहेंगे वही मै करूँगा। मैंने उनको माताजी की बात बतायी। वे भी माताजी को जानते थे पर मैंने माताजी में और उनमें कोई फर्क नहीं पाया।'' बेल्जियम का राज परिवार आया माँ के दर्शनों के लिए। एकान्तवार्ता के उपरान्त जाते समय किसी कौतूहली ने प्रश्न किया- ''आप तो भाषा वगैरह नही समझते आपको माँ कैसी लगीं'' उत्तर था ''हमने तो ईसा की ज्योति देखी माँ के महिमामय मुखारविन्द पर।'' कनाडियन प्रधानमंत्री श्री त्रुदो को भी माँ के चरणों में बैठा देखते हैं।

भारत से लौटने वाले किसी विदेशी से भारत आने वाले किसी विदेशी आगन्तुक ने पूछा- ''किसको देखने से भारत को देखना हो जायेगा'' भारतप्रवासी ने कहा-''माँ आनन्दमयी को''। आगन्तुक भारत आया डिवाईन लाइफ सोसाइटी शिवानन्द आश्रम ऋषिकेश गया। माँ आनन्दमयी कौन हैं ? पता किया। श्री शिवानन्दजी ने कहा- ''भारत की धरती का सबसे विकसित फूल।''

बंगाल के सिद्ध साधक रामठाकुर महोदय ने माँ के प्रति साक्षात् देवी भाव रखने का निर्देश दिया था। देवघर के महान् तपस्वी श्री बालानन्द ब्रहमचारीजी ने माँ को

देखकर कहा था- ''माँ अपनी गठरी खोलो।'' माँ का सहज सरल उत्तर था- ''पिताजी गठरी तो खुली हुई है।'' विश्वप्रसिद्ध स्वामी योगानन्द परमहंसजी की माँ के प्रति श्रद्धा की भावना उनकी ''आत्मकथा एक योगी की'' नामक अंग्रेजी पुस्तक में मिलती है। महान् योगी श्री विशुद्धानन्द परमहंस के सान्निध्य में एक छोटी बच्ची के रूप में माँ को देखते हैं वाराणसी में।

सन् 1932 में माता जी पहली बार दीर्घ समय के लिये बंगाल से बाहर आयीं। साथ में बाबा भोलानाथ एवं भाईजी ''श्री ज्योतिषचन्द्र राय'' भी थे। माताजी का पहला पदार्पण नगाधिराज की उपत्यका देहरादून में हुआ। देहरादून से अनति दूर रायपुर नामक गाँव में जीर्ण शिवालय से संलग्न टूटी-फूटी कुटिया में माताजी रहने लगीं।

इसी समय माताजी मसूरी, उत्तरकाशी आदि पार्वत्य अंचलों में पैदल गयी थीं।माताजी के सहज मधुर दिव्याकर्षण ने यहाँ भी प्रभाव डाला। भोले-भाले पर्वत निवासी तो आकृष्ट हुए ही, साथ ही धनाढ्य उच्चशिक्षित वर्ग भी आकर्षित हुआ। यद्यपि भाषा पृथक् थी पर विशाल विराट् के लिए देशकाल भाषा बाधक कब हुई है, उसकी विराट् छत्रछाया में सब एक है। उस एक का ही मधुर गुंजन सबने सुना माताजी की मधुर वाणी में-''एकाग्रता और सरल विश्वास ही उनको पाने का उपाय है।'' जो दो लेकर है, उसे ही दुनिया कहा जाता है। तुम लोग इस दो को लेकर रहने का भाव छोड दो, एक भाव लेकर रहने की कोशिश करो। तब ही शान्ति आयेगी। एक मंत्र एक में ही सत्य, शान्ति और आनन्द। ''संसार'' का अर्थ है सं अर्थात् दिखावा ही जिसका सार (यथार्थ) है वही संसार है।जब तक तुम सं बनकर रहोगे तब तक शान्ति कैसे आ सकती है? तुम यथार्थ में जो हो, वह न होने तक शान्ति कहाँ? अत: कहती हूँ अपने को पहचानने की कोशिश करो।''

तुम्हारा घर कहाँ है? पूछने पर किसी ने अपने सांसारिक घर का निर्देश दिया। माँ कहती हैं-'' वह तो साँस का मकान है। जितने दिन साँस है उस मकान में रहने देंगे। उसके बाद अपने घर की कुछ खबर करते हो? जब लक्ष्य स्थिर होगा तब देखोगे एक छोडकर दो नहीं, पेड की ही छाया और कुछ नही।''

नाम संकीर्तन के संबंध में माँ कहती हैं-'' जो कीर्तन करता है, उसका चित्त शुद्ध होता है। जहाँ कीर्तन होता है, वह स्थान पवित्र होता है। जो कीर्तन सुनता है, वह भी पवित्र होता है।''

माताजी ने महिलाओं को भी नाम-संकीर्तन के लिए उत्साहित किया। उन्होंने कहा -''देखो लडकियों को छोडकर नहीं जाना, तब तुम लोगों के काम में भी बाधा आयेगी। उनको भी इस काम में सहयोग देने की शिक्षा दो। तुम्हें भी बल मिलेगा।''

यही समय था जब पं0 जवाहरलाल नेहरू की माता स्वरूपरानी तथा पत्नी कमला नेहरू ने भी माँ का दर्शन किया था और माँ के साथ उनका अटूट सम्बन्ध बन गया।

कमला जी की अस्वस्थता के समय भुवाली में माताजी उन्हें देखने भी गयी थीं। पं0 जवाहरलाल नेहरू तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने इस परम्परा को अन्त तक निभाया।

सन् 1936, अगस्त के महीने में माताजी अपने ख्याल से अज्ञातपथ की यात्रा पर जाती हैं। माँ के साथ विराजमोहिनी दीदी नामक एक बंगीय विधवा मात्र थी, सामान की दृष्टि से एक वस्त्र, एक लोटा एवं एक कम्बल यही उनका सम्बल था। तीन महीने के इस परिभ्रमण में माँ उत्तर भारत में कहाँ-कहाँ नहीं गयीं। लाहौर, अमृतसर तक माँ का पदार्पण हुआ। हम लौकिक दृष्टि से देखें तो पूर्व बंगाल की एक ग्रामीण वधू के लिए उत्तर भारत की भाषा एवं लौकिक आचार बाधक हो सकते थे परन्तु माँ आनन्दमयी के दिव्याकर्षण ने तो भाषा, काल, व्यवहार सभी को दुत्कार दिया और माँ के साथ विविध भाषा-भाषी आबाल, वृद्ध, वनिता, युवक, पुरुष, यति, ज्ञानी, गुणी सभी की मण्डली जुट गयी। गुरुप्रिया दीदी इस परिभ्रमण में माँ के साथ नहीं थीं अत: माँ के साथ किसी अपरिचित क्षेत्र में जाने पर जब वह देखती थीं कि कोई न कोई माँ का परिचित मिल जाता था, तो उनकी जिज्ञासा थी ''माँ इनके साथ आपका परिचय कब हुआ?'' माँ का उत्तर था ''अपरिचित ही कब कौन था?''

सन् 1937 में माताजी, बाबा भोलानाथ, भक्त प्रवर भाईजी (श्री ज्योतिषचन्द्रराय), स्वामी अखण्डानन्दजी (गुरुप्रिया दीदी के पिता), गुरुप्रिया दीदी एवं कतिपय भक्तों सहित कैलास मानसरोवर की यात्रा पर गयी थीं। इस पार्वत्य अंचल में भी मार्ग में आते-जाते माँ के अद्‌भुत आकर्षण ने प्रभाव डाला। फल की टोकरी लेकर बैठने वाली क्लान्त परिश्रान्त वृद्धा से चपल बालिका की भाँति मधुरालाप करती हुई माँ जब आगे बढ जाती हैं, अपरिचित वृद्धा अपने अनजान में ही आँसू पोंछती हुई दिखायी पडती है।

कैलास से लौटने के उपरान्त 17 अगस्त 1937, श्रावण शुक्ल पंचमी को अल्मोडा में पूज्य भाईजी का देहावसान हो जाता है। सन् 1938 में 6 मई को देहरादून किशनपुर आश्रम में भोलानाथजी ब्रह्मलीन होते हैं। इसी वर्ष दिसम्बर में माँ के 71 वर्षीय वृद्ध पिता श्री विपिनबिहारी भट्टाचार्य का कलकत्ता में देहावसान होता है। सन् 1939 में चैत्र संक्रान्ति के अवसर पर माँ के ही ख्याल से माता मोक्षदा सुन्दरी देवी ने कनखल के महात्मा स्वामी मंगलानन्द गिरि से संन्यास दीक्षा ली। नाम हुआ मुक्तानन्द गिरि। यहाँ भी भारतीय संस्कृति की परम्परा, माँ के चिर आनन्दमय स्वरूप में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

भक्तों की दृष्टि में माँ के दिव्य रहस्यमय चरित्र की एक और दिशा प्रकाशित हुई, गुरुप्रिया दीदी लिखती हैं-''माँ सर्वदा ही मुक्त, उनको बाधा देने की क्षमता किसी में नहीं है। यह एक अद्‌भुत् चरित्र है। बनाने-तोडने में तनिक विलम्ब नहीं होता। माँ सबमें हैं, पर किसी में नहीं हैं। यह चरित्र पूर्णभाव से माँ में ही परिस्फुट होता है। माँ की तुलना माँ ही है।''

निज गुरु के सम्बन्ध में माँ का कहना है ''पहले माता, पिता, गुरु, जिसके हाथ में देकर कहा यही तुम्हारे गुरु, उनको ही गुरु माना, उसके बाद तुम सब पशु, पक्षी, कीट, पतंग सब ही गुरु, कारण एकमात्र वे ही गुरु और यह जो कुछ देख रहे हो सब ही वे। यदि गुरु कहो तो एकमात्र वे ही गुरु, मैं ही मेरी गुरु।'' सन् 1922 श्रावणपूर्णिमा के दिन बाजितपुर में माँ के श्री शरीर में स्वत: ही दीक्षा का खेल प्रकाशित हुआ था।

किसी के प्रति विरोध है कि नहीं जिज्ञासा करने पर माँ कहती हैं-''विरोध से विरोध है।'' किसी अनुचित प्रसंग पर किसी के हटाने के प्रश्न पर माँ का उत्तर है -''किसको कहूँगी हट जाओ क्या हटाऊँगी, कहाँ हटाऊँगी, एक छोडकर दो नहीं।''

सन् 1938 में दक्षिणेश्वर कलकत्ता में नेताजी सुभाष माँ के चरणों में आते हैं, वे कहते हैं-''मैं कुछ कहने नहीं, लेने आया हूँ।'' सन् 1941 में वर्धा के सेठ जमुनालाल बजाज माँ के सान्निध्य में आते हैं। वे पूज्य महात्माजी को पत्र लिखते हैं -'' माँ से नवचेतना, नवजीवन प्राप्त होता है।'' सन् 1942 में माँ को हम सेवाग्राम में पू0 महात्माजी के साथ मधुर-मधुर बातें करते हुए पाते हैं और माँ के सामने हाथ जोडे पू0 विनोबा भावे, डा0 बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि महानुभावों को देखते हैं। कस्तूरबा का सश्रद्ध प्रणाम माँ के चरणों में अर्पित होता है।

वहीं पर तारापीठ में एक मछुआ मछुवी के घर पपीते के पत्ते पर बैठ कर रसालाप करते तथा गढमुक्तेश्वर में एक कुम्हार के घर चाक के सामने बैठ कर कहते हुए सुनते हैं कि ''मिट्टी को खूब कष्ट हो रहा है, परन्तु फिर भी उसे घुमाकर तैयार करना ही पडेगा। तैयार होने में ऐसा ही कष्ट करना पडता है।''

बाघाट नरेश दुर्गासिंह जी की तथा अन्यान्य राजन्य वर्ग की राजकीय आतिथेयता में जहाँ माँ को देखते हैं वही बाजरे की रोटी व गुड भिक्षा में लेते तथा पहाडी महिला द्वारा अति आदर से लायी हुई रोटी सब्जी का भी स्वाद लेते हुए देखते हैं।

मैनपुरी के पुण्डरीग्राम में जहाँ माँ के स्वागत के लिए जमींदार नवरतन जी की चार मोटरें तैयार हैं वहीं माँ पैदल किमनी गाँव में भिक्षा प्राप्त चावल, दूध से भोग ग्रहण कर रहीं हैं। सर्वत्र परिभ्रमण के सम्बन्ध में माँ का कहना है- ''मैं इस विराट बगीचे में घूम-घूम कर खबर लेती हूँ, कौन पेड़ कैसा है।''

देश या विदेश का ऐसा कौन सा वर्ग है जो माँ के उन्मुक्त दरबार में न आया हो?

विश्व के विख्यात दार्शनिक पंडित गोपीनाथ कविराजजी तथा सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन की ज्ञानगर्भित बातें जहाँ सुनते हैं, वहीं जगत्प्रसिद्ध एम0 एस0 शुभलक्ष्मी का गायन सुनाई पड़ता है। नाट्य सम्राट् उदयशंकर, गायक अलाउद्दीन खाँ, सरोदवादक अली अकबर खाँ, सितारवादक श्री रविशंकर तथा शहनाई की मधुर तान छेड़ते हुए

शहनाई सम्राट् बिसमिल्ला खाँ को भी माँ के दरबार में उपस्थित पाते हैं, उसी एक लक्ष्य-प्राप्ति की आकांक्षा को हृदय में सँजोए हुए।

उत्तर भारत के सन्त समाज में तो माँ का नित्य प्रवेश था। माँ को संतसमाज से परिचय कराने का श्रेय झूसी के प्रसिद्ध संत श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी को है। उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध महात्मा श्री त्रिवेणीपुरीजी महाराज (खन्ना बाबा), तपोभूमि उत्तरकाशी के सिद्ध तपस्वी श्री देवी गिरि जी महाराज, गंगोत्री के श्री कृष्णाश्रम जी महाराज तथा काशी के महान् तितिक्षु श्री शंकर भारतीजी एवं वृन्दावन के प्रेमी महात्मा श्री उड़िया बाबाजी महाराज माताजी से अत्यन्त स्नेह करते थे। वृद्ध-वृद्ध तपस्वी जनों का श्रद्धामिश्रित स्नेह एवे माँ का भोली-भाली बालिका सदृश सहज सरल भाव एक अलौकिक दिव्य आनन्दमय परिवेश का सृजन करता था। इनके अतिरिक्त वृन्दावन के महान् सन्त श्री हरिबाबाजी महाराज, श्री शरणानन्दजी महाराज, श्री कृष्णानन्द अवधूतजी, कैलासाश्रम के श्री चेतनगिरिजी महाराज, शुकताल के दण्डीस्वामी श्री विष्णु आश्रमजी महाराज, बम्बई के कीर्तनरसिक श्री कृष्णानन्दजी, संन्यासाश्रम के श्री महेश्वरानन्दजी महाराज, कनखल के श्री पूर्णानन्दजी महाराज? विख्यात भागवत् रसिक श्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी का तो माताजी से अविच्छिन्न सम्बन्ध बना रहा।

श्री श्री माँ के सान्निध्य में कई विराट् कार्य हुए हैं जिनका आध्यात्मिक एवं सामाजिक उभय दृष्टि से विशेष महत्व है।

सन् 1947 से 1950 तक वाराणसी आश्रम में तीन-वर्ष व्यापी अखण्ड सावित्री यज्ञ इनमें अन्यतम है। इस अभूतपूर्व यज्ञ को देखने के लिए देश के कोने-कोने से विराट् जन समुदाय एकत्र हुआ था। समूची वाराणसी नगरी तो यज्ञ का एक अग ही थी। उत्तराखण्ड के देवदुर्लभ श्री त्रिवेणीपुरीजी, श्री देवीगिरिजी आदि योगीजनों का पदार्पण तथा अन्यान्य संतजनों का साधारण जनों के लिए दुर्लभ एकत्र सम्मिलन माँ की अहैतुकी कृपा से सम्भव हुआ। दस हजार ब्राह्मणों के भोजन से यज्ञ की विशालता का अनुमान किया जा सकता है। सन् 1926 में ढाका में कालीपूजा के समय प्रज्ज्वलित अग्नि को इस महायज्ञ में लगाना शास्त्रीय और आध्यात्मिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इसका महान् उद्देश्य था ''विश्व शांति''। आज भी वाराणसी आश्रम में इसी यज्ञाग्नि में नित्य आहूति दी जाती हैं।

प्राचीन काल की श्रीमद्भागवत् सप्ताह पारायण की परम्परा माताजी की सात्विक प्रेरणा से पुनर्जाग्रत हो उठी। भागवत् सम्राट् अखण्डानन्द सरस्वती तथा शुकताल के दण्डीस्वामी श्री विष्णु आश्रमजी द्वारा नैमिषारण्य, शुकताल, वाराणसी आदि तीर्थों में विधिवत् श्रीमद्भागवत् सुनने का सौभाग्य भक्तों को कई बार प्राप्त हुआ। अमृतवर्षी महापुरुषों के श्रीमुख से अमृतमयी भगवत्कथा श्रवण का कुछ और ही महत्व है। ये पारायण कभी पाक्षिक तथा अधिकतर साप्ताहिक होते थे। वृन्दावन के व्यास श्री श्रीनाथ

शास्त्री की भागवत्-व्याख्या की पूर्व सूचना सम्भवत: श्री श्री माँ के दरबार से ही हुई होगी।

इसके अतिरिक्त प्रेमावतार चैतन्य महाप्रभु के समय होने वाले अखण्ड-महानाम संकीर्तन की परम्परा को भी माँ की उपस्थिति में उत्साह प्राप्त हुआ। 24 घण्टों का अखण्ड महानाम यज्ञ विधिवत् होने लगा। नामगान से बाहर, भीतर एवं वायुमण्डल को पवित्र करने का यह अनुपम तरीका है जिससे मानव के निर्मल चित्त में आत्मिक बल प्राप्त होता है तथा वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल होता है।

सत्संग- यत्र तत्र सत्संग का आयोजन। आयोजन न भी कहें तो ठीक है। माताजी कहीं जा रहीं हैं गाड़ी आने में देर है-

माँ ने कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। माँ के मधुर कण्ठ-स्वर से जाने-अनजाने सब खिंचे चले आये। तमाशा देखने की दृष्टि से आने वाले भी न जाने कब तालियाँ बजाकर नाचने लगे, यह वे भी न जान पाये। मोटर खराब हो गयी माँ आस-पास के गाँव में चली गयीं, किसी पेड के नीचे प्रारम्भ हुआ भगवन्नाम, चाहे माताजी अकेली क्यों न हों। गाँव वालों को सप्ताह में एकदिन वहाँ एकत्रित होकर भगवन्नाम करने का निर्देश देकर माताजी वहाँ से चल पडीं।

1936 की बात है। माताजी आसाम डिब्रूगढ जा रही थीं। मार्ग में पाण्डु स्टेशन आया। कुछ स्कूल के बच्चे माँ के डिब्बे में चढे। माँ से उनकी मित्रता हो गयी। बालक मात्र माँ के दोस्त थे। माताजी ने उनसे पाँच बातें कहीं -

1. सुबह उठकर तथा सोते समय भगवान से प्रार्थना करना हमें अच्छे बच्चे बनायें।
2. सदा सच बोलना।
3. गुरुजनों का आदेश पालन करना।
4. खूब पढना।
5. जब चारों बातें अच्छी तरह हो जायें तो खूब खेलना।

उन्हें नित्य प्रति अपने प्रिय भगवान का नाम लिखने के लिए नयी कॉपी पेन्सिल दिलवायी। गाडी रुकी बच्चों को उतरना था। वे मानों जबरदस्ती उतरे। जाते समय कह गये आप जब यहाँ लौटेंगी हमें खबर दीजियेगा, हम मिलने आयेंगे। आसाम का कार्यक्रम पूरा करके माँ लौटीं, पाण्डु स्टेशन पर माताजी ने बच्चों की खोज करवायी, पर कोई नहीं मिला। माँ के ख्याल से एक व्यक्ति ऐसा मिला जो बच्चों को जानता था। माताजी ने संदेशा भेजा- ''उनको कहना - मैं आयी थी, उनकी खोज की थी।'' गाडी चल पडी।

माँ के ही ख्याल से (श्री दुर्गा सिंह जी) योगी भाई की अन्त:प्रेरणा से सन्

1952 में संयम महाव्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ।

प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला अष्ठमी से कार्तिक पूर्णिमा तक चलने वाले संयम महाव्रत का अनुष्ठान विश्व के मानव मात्र के प्रति श्री श्री माँ आनन्दमयी की अनुपम देन है। इन सात दिनों में जिज्ञासु साधकजन अपने अपने सोपान को प्राप्त करने का सहारा तथा अपने को संयमित करने का सहज उपाय प्राप्त करते हैं। यह प्रतिवर्ष माताजी के कनखल स्थित आश्रम में अनुष्ठित होता है। माँ की उपस्थिति में विविध महात्माओं के आग्रह से यह महाव्रत विभिन्न स्थानों में हुआ था, जिनमें श्री गणेशानन्दजी महाराज के आग्रह पर कुरुक्षेत्र में, श्री कल्याणदेवजी महाराज के आमन्त्रण पर शुकताल में, गोस्वामी गणेशदत्तजी के आव्हान पर सप्त सरोवर हरिद्वार में, सुरतगिरि कनखल के महामण्डलेश्वर ब्रहमानन्दजी के आव्हान पर सुरतगिरि आश्रम, कनखल तथा रेवा तट नर्मदा किनारे, संतराम आश्रम के महंत श्री नारायणदासजी महाराज के आग्रह से नाडियाद गुजरात तथा कैलासपीठ ऋषिकेश की शतवार्षिकी के उपलक्ष्य में पीठाधीश्वर महामण्डलेश्वर श्री विद्यानन्दजी महाराज के निमंत्रण पर कैलासाश्रम ऋषिकेश में अनुष्ठित हुआ था। इसके अतिरिक्त भक्तों के आग्रह से अहमदाबाद, बम्बई, गोंडल तथा माँ के विविध आश्रमों में भी हुआ है। अध्यात्म के पथिकों के लिए यह सर्वोत्तम मार्ग है।

माताजी की विराट् उपस्थिति में एक और विषय की ओर हमारा ध्यान जाता है वह है प्राचीन तीर्थों का पुनर्जागरण। इनमें उत्तर प्रदेश स्थित सीतापुर जिले का नैमिषारण्य अग्रगण्य है जो पुराणों की जन्मस्थली थी तथा जहाँ 88 हजार ऋषियों ने एक साथ बैठकर साक्षात् भगवान सूतदेवजी के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत की कथा श्रवण की थी। पर आज वहाँ पुराणों का नाम निशान भी नहीं था। प्राचीन मन्दिर अवश्य थे। माताजी के दिव्य ख्याल से वहाँ पुराणमन्दिर की प्रतिष्ठा हुई, न केवल मन्दिर प्रतिष्ठा अपितु पुराणपुरुष की दिव्य प्रतिमा तथा 18 पुराणों की स्थापना हुई।

प्राचीन तीर्थ कनखल भी माताजी के पदार्पण से पुनर्जाग्रत हो उठा, यदपि प्राचीन मन्दिर तो वहाँ थे ही, आज वहाँ पर श्री श्री आनन्दमयी संघ का मुख्यालय है। केवल यही नहीं माताजी की गर्भधारिणी माता मोक्षदा सुन्दरी देवी जी का परवर्ती काल में निर्वाणी अखाडे के उच्चकोटि के महात्मा श्री मंगलगिरिजी महाराज से संन्यास दीक्षा प्राप्त कर श्री मुक्तानन्द गिरिजी के नाम से प्रसिद्ध हुई थीं तथा सौभाग्यवान मातृभक्तों के लिए यथार्थ रूप में गुरु थीं, उनका समाधि-मन्दिर विद्यमान है। सन् 1981 में माताजी की उपस्थिति में अतिरुद्र महायज्ञ यहाँ सम्पन्न हुआ था एवं इस यज्ञ हेतु विधिवत् विनिर्मित एक विशाल प्रस्तर निर्मित यज्ञमण्डप यहाँ शोभायमान है जोकि दक्षप्रजापिता के समय हुए यज्ञ की याद दिलाता है। पास ही दक्षेश्वर महादेव का विशाल मन्दिर है। भक्तों के लिए अथवा यों कहें विश्व के लिए माँ आनन्दमयी यहाँ सदा-सदा के लिए विराजमान हो गयीं। आज वहाँ पर संगमर्मर निर्मित विशाल मन्दिर

सुशोभित है, जिसका 87 फीट ऊँचा गगनचुम्बी शिखर दूर दिगन्त के चराचर के प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित करता है। आज यहाँ सैकडों की संख्या में दर्शनार्थी प्रतिदिन दर्शन करने आते हैं।

विन्ध्याचल, श्रीवृन्दावनधाम, वाराणसी, उत्तरकाशी, जगन्नाथपुरी, तारापीठ, केदारनाथ, नैमिषारण्य आदि तीर्थस्थलों के अलावा देहरादून, अल्मोडा, नयी दिल्ली, पूना, राजगीर, भीमपुरा (चान्दोद), आगरपाडा (कलकत्ता), जमशेदपुर, भोपाल, बैंगलोर आदि विभिन्न स्थानों में माँ आनन्दमयी आश्रम विधमान है। बांग्लादेश ढाका में सिद्धेश्वरी तथा माँ के जन्मस्थान खेउडा में भी माँ के आश्रम हैं।

सुन्दर जीवन का निर्माण किस प्रकार हो इस प्रश्न के उत्तर में माता जी ने कहा था- ''एक बार यह शरीर मसूरी में था। वहाँ एक दिन तीसरे पहर टहलते वक्त देखा गया कि एक मैदान में अनेक छोटे-छोटे बच्चे खेल रहे हैं। अचानक एक घंटी बजते ही जो जिस हालत में था उसी तरह दौडकर भीतर चला गया, वह स्थान जनशून्य हो गया। यही है नीति की दिशा। ठीक इसी प्रकार मनुष्य के जीवन ब्रहमचर्य आश्रम का जब तक ठीक ढंग से पालन नहीं होता तब तक नीति और विधि की दिशा का निर्माण नहीं हो पाता।''

माताजी के ये शब्द केवल शब्द रूप में ही नहीं रहे अपितु माँ के ही दिव्य ख्याल से सन् 1938 में बालिकाओं के लिये माँ आनन्दमयी कन्यापीठ तथा 1941 में बालकों के लिये माँ आनन्दमयी विद्यापीठ नामक दो शिक्षा-संस्थानों की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य केवल बालक बालिकाओं को सत् जीवनयापन की शिक्षा देना ही नहीं था, अपितु जो शिक्षित घर की कन्यायें या युवक गृहस्थाश्रम में नहीं जाना चाहते हैं वे इस पठन-पाठन के शुद्ध कार्य से स्वयं भी शुद्ध जीवनयापन करेंगे तथा अपना आदर्श बालकों के सामने रखेंगे, यह भी लक्ष्य था। इससे उभय कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। कालान्तर में वाराणसी में माँ आनन्दमयी कन्यापीठ तथा अलमोडा में माँ आनन्दमयी विद्यापीठ की स्थापना हुई। आज कनखल में विद्यापीठ परिचालित है।

रोगरूपी जनार्दन भी माताजी की दिगन्तव्यापी विराट् दृष्टि से दूर न रहे। माताजी के श्री शरीर में ज्वर आदि आने पर भक्तों की प्रार्थना होती थी - माँ अपने को स्वस्थ करिये। इस पर माँ कहती थीं - ''तुम लोगों के आने से भी भगा नहीं देती, रोग भी आकर खेल कर रहे हैं उनको क्यों भगाऊँ ? जितने दिन खेलने का है खेल कर अपने से ही चले जायेंगे।'' अत: कालान्तर में देखा जाता है कि श्री गुरूप्रिया दीदी के उद्योग से वाराणसी में माँ आनन्दमयी चिकित्सालय तथा डा0 गोपाल दास गुप्त के आग्रह से माँ आनन्दमयी करुणा एवं शिशु कल्याण केन्द्र की भी स्थापना हुई, जहाँ रोग रूपी जनार्दन की नित्य सेवा होती है।

27 अगस्त सन् 1982 तक माँ आनन्दमयी के दिव्य पवित्र चरणाविन्द के पदार्पण

से भारत का कोना-कोना पवित्र हुआ तथा ''हरिकथा ही कथा'' के महावाक्य से दिगन्त मुखरित हुआ।

विश्व मानवता के प्रति माताजी का एक मात्र आवेदन था- ''प्रतिदिन एक निर्दिष्ट समय 10 मिनट तक उनको पुकारना। यदि सांसारिक कार्य की व्यस्तता में एक जगह चुप करके बैठ न सको तो उस निर्दिष्ट समय मौन रहकर जिसकी जिस प्रकार की इच्छा, उनको स्मरण करना। इसमें शुद्धाशुद्ध विचार नहीं। कपडा बदलकर पवित्र होने की आवश्यकता नहीं। यदि उस निर्दिष्ट समय शौच भी जाना पडे तो भी बाधा नहीं। वहीं बैठ कर दस मिनट उनको पुकारना। सोचना यह दस मिनट उनको दिया। पशु पक्षी जैसे निर्दिष्ट समय पुकार उठते हैं, किसी प्रकार का विघ्न नहीं मानते, उसी प्रकार तुम लोग भी एक निर्दिष्ट समय उनको देने की कोशिश करो। यह समय उनको समर्पण किया है, इस भाव को रखना।'' साथ में एक और वाक्य ''कौन किसका दर्शन करता है। अपने ही अपने का दर्शन करने आये हैं।'' ऐक्य का महामंत्र।

आज वह समय है, जब एकता का नाम निशान नहीं है, मानवता लुप्त-प्राय हो गयी है, आज इन्सान ढूँढा जाता है, मानव मन भ्रमित है।'' तो आइये माँ आनन्दमयी की शुभ जन्मशती के मंगलमय क्षण में हम सब इस प्रेम, करूणा, ज्ञान के दिव्य जीवनालोक तले एकत्रित होकर ''**अपने को पाना अपने को जानना**'' के महावाक्य का निरन्तर श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते हुये अपने असली लक्ष्य पर पहुँचने के मार्ग को प्रशस्त करें, यही होगा विश्वकल्याण का सबसे मंगलमय कार्य। हमारा पाथेय होगा, यह महामंत्र -''**वे लोग दूर सोचते हैं, पर यह शरीर तो पास ही है। छोडने का उपाय कहाँ?**

जो जैसा कहो मैं वही, मुझे कीडा कहो तो मैं वही, अन्याय कुछ कहो, मैं वही, तुम लोगों का दोस्त कहो, मैं वही, तुम लोगों की बच्ची कहो, मैं

वही।''

– श्री श्री माँ

श्रीमुख निःसृत शतवाणी सुमन

श्री श्री माँ आनन्दमयी के उपदेश

1 सत्य स्वरूप, सुख स्वरूप, आनन्द स्वरूप एकमात्र भगवान मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान का लाभ।

2 जो त्याग हो जाता है उसी को त्याग करने की बात उठती है, जो नित्य सत्य वही ग्राह्य।

3 मन को उनके चरणों से अलग मत रखों इससे हर प्रकार के प्रलोभन से बच सकोगे।

4 मनुष्य का कर्त्तव्य है मनुष्यत्व का जागरण, पशुभाव का त्याग। श्रेय ग्रहण, प्रेय का त्याग।

5 तत्ध्यान, तत्चिन्तन में मन को सर्वदा रखने का प्रयत्न करो। सत्यकथा, संयमव्रत सद्ग्रंथादि के पाठ, सत्संग में चौबीसों घण्टे अपने को फंसाए रखना।

6 प्रत्येक के जीवन में संयम आवश्यक है, सबसे पहले शरीर के प्रति यथासाध्य शासनदृष्टि से संयम का अभ्यास करना चाहिए।

7 उन्हें पुकारना, उनपर निर्भर रहना। जहाँ भी रहो उनकी गोद में । जगत् में सुख पाना चाहते हो तो उनको पाने की इच्छा करो।

8 मेरा है समझकर सबको पकडे हुए हो। यह सब दु:ख पाने की चेष्टा है। उन्हीं का सब कुछ है, समझकर उनको बुलाना। उन्हीं का है इसलिए उन्हें बुलाना, यही बडी पुकार है।

9 कर्त्तव्य-पालन करते जाओ, धीर-वीर होकर, वे ही सब करा रहे हैं। इसे याद रखो। वे जो कुछ करायें गे, वही ठीक है। उनके हाथ में स्वयं को यन्त्रवत् रखने की चेष्टा करो, चिन्ता मत करो।

10 जिसका मन सावधान व आत्म-चिन्तारत है उसे मनुष्य कहते है। मनुष्य न होने पर अतिमानव नहीं हुआ जाता। समाज और नीति के अनुशासन पर चलते-चलते मनुष्य को मनुष्यत्व लाभ होता है, उसके बाद पारमार्थिक भावादि आकर जब मनुष्य को भावित करते हैं तब वह मोह की सीमा लाँघकर अतिमानव होता है।

11 शुद्ध पवित्र फूल ही भगवान के चरणों पर चढ़ता हैं अपने को भगवान के चरणों में अंजलि देने के लिए सर्वदा शुद्ध पवित्र भाव को बनाए रखो।

12 जो आत्मा है, प्राणों के प्राण, उनकी बातें , उनका गुण, वर्ण व उनका रूप सभी में देखने की चेष्टा करो। अकेले? अकेले कहाँ? बन्धु क्या बन्धु को छोड़कर है?

13 शान्तिमय पर निर्भर रहो, तभी शान्ति की आशा। अभय की शरण लेना। पूरा संसार ही भय है अभय के आश्रय में रहोगे तो भय नहीं लगेगा।

14 दर्शन माने ग्रहण। देना माने लेना।

15 सब समय "स" में रहना-स्मरण और शरण इससे मरण की भी मृत्यु हो जाती है।

16 जितना अधिक भगवान का चिन्तन किया जाय उतना ही लाभ। संसार जहाँ, अभाव वहाँ। मन को उनके चरणों में इच्छा से, अनिच्छा से लगाए रहने पर शान्ति मिलने की आशा है।

17 किसी से कोई चीज यदि लेनी हो तो जितनी आवश्यकता हो उतनी ही लेना एवं दूसरे को देते समय जितना पाकर वह संतुष्ट हो जाय यथाशक्ति उतना ही देना।

18 संकुचित चित्त को बृहत् करके स्वार्थ और परार्थ का अभेद ज्ञान उत्पन्न करने के उद्देश्य से परोपकार, दान, दया इत्यादि द्वारा यथासाध्य सेवा करना।

19 जब तक अपनी भोग-वृद्धि व अभाव का बोध है, तब तक दूसरे के अभाव को देखना चाहिए। ऐसा न होने से मनुष्यत्व लाभ नहीं होता।

20 धर्म ही धर्म का पुरस्कार है। धर्म से चलने से शास्त्र के अनुसार धर्म रक्षा

करता है। धर्म धर्म की रक्षा करता है। धर्म से चलना, तो कष्ट रूपी भगवान नहीं आयें गे। धर्मनीति से रक्षा होती है कष्ट नहीं आता।

21 संसार-यात्रा में कभी कोई सुखी नहीं होता, परमार्थ यात्रा ही परमसुख का मार्ग है। उसी अपने मार्ग पर स्वयं चलने की चेष्टा करो, जहाँ सुख-दुख नहीं है, अभिमान शून्य परमानन्द की ओर।

22 वासनाजनित जो कष्ट है, बाधा विघ्न से आता है, उसके भीतर उनका करुणाहस्त सत्य है, समझते हुए मानना पड़ेगा।

23 अस्थिर होने से नहीं चलता। अस्थिर भगवान के लिए होना पड़ता है। अभी तक उनकी आवाज सुनायी नहीं दी। अमूल्य समय बेकार चला जा रहा है। विषय-वासना में अस्थिर होकर मन और शरीर को कलुषित नहीं करना चाहिए।

24 यही समय है अपने निर्माण का। आश्रय लेना होगा त्याग और धैर्य का। पूर्व जन्मगत संस्कार अनुयायी जो दुर्गुण प्रकट होते हैं इससे मुक्त होने के लिए सद्भाव सर्वांगीण रूप से हृदय में स्थापित करने की चेष्टा करो।

25 किसी भी सत्कर्म में अनिच्छा या आलस्य बिल्कुल वर्जित है। किसी की किसी प्रकार की सेवा में जो कष्ट होता है, उसे आनन्द के साथ ग्रहण करो।

26 जो लोग कुछ करने में असमर्थ हैं, जिनके धर्म-जीवन का कोई सहाय नहीं है, उन लोगों से ही मेरा विशेष प्रयोजन है।

27 **जीवन में बुद्धि के अनेक खेल खेलें हैं। हार-जीत जो होनी थी, हो गई। एक बार निराश्रय की भाँति उनकी गोद में कूद पड़ो, तुम्हें और कोई चिन्ता करनी ही नहीं पड़ेगी।**

28 मनुष्य अभाव रूप में प्रकाशित अभाव की ही चिन्ता करते हैं; अभाव को ही प्राप्त होते हैं। इसीलिए स्वभाव की चिन्ता ही कर्त्तव्य है, नहीं तो अभाव-अक्रिया-अगति-दुर्गति -मृत्यु। अपने में आप ही।

29 स्वभाव में, स्वरूप में, स्व-स्थिति में अवस्थान करने की क्षमता मनुष्य में ही है। अज्ञान का जैसा पर्दा है ज्ञान का दरवाजा भी वैसे ही है। ज्ञान के दरवाजे से ही लोग स्वभाव में लौट आते हैं, स्थिति-लाभ करते हैं।

30 भगवान के राज का खेल कितना सुन्दर है! आत्मा-एक आत्मा ही तो, फिर भी मैं-तुम, मेरा-तेरा यह सब है। यदि मेरा तेरा कहना हो तो भगवान के

नित्य दास बनों।

31 सत्य स्वरूप भगवान तुम्हारे ही बीच हैं न? इसलिए निजी चिन्तन-निजी ध्यान छोड़ना नहीं।

32 निजी वस्तु अपने को पाने के लिए। आनन्द आनन्द ही। निरानन्द और कहाँ। वही है केवल मात्र।

33 हर समय तुम पास ही हो दुर्बुद्धि दूर करनी होगी। तुम भीतर-बाहर, नस-नस में , चारों ओर विश्व में , विश्वातीत में हो।

34 अपने को पाने की दिशा एकमात्र दिशा और सब वृथा एवं व्यथा।

35 ऋषिपन्थ से गृहस्थाश्रम की यात्रा में चलने का व्रत लेना।

36 स्वयं भगवान का अनन्त रूप घर-घर में है। आने से ही जाना पड़ता है, दो दिन आगे और पीछे। जिनकी सृष्टि, स्थिति जिनमें लय उनकी शरण बिना ज्वाला-निवारण का रास्ता कहाँ!

37 अन्तर संन्यास ही तो संन्यास। संन्यासी होना बड़े भाग्य की बात है। संन्यास सर्वनाश नाश भाव का भी नाश होना। संन्यास लेना और संन्यास होना एक बात नहीं है।

38 **महाशून्य ही एकमात्र उनका रूप है।**

39 **भगवान को पाना अपने को जानना है। अपने को जानना भगवान को पाना है।**

40 दुश्चिन्ता क्यों होती है जानते हो! भगवान को दूर देखने से ही दुश्चिन्ता होती है।

41 सर्वदा याद रखना भगवत् कर्म-साधन के लिए ही यह शरीर है। इसीलिए देह, प्राण, मन देकर उनको पकड़कर रखने की केवल सर्वक्षण चेष्टा करना।

42 मनुष्य का ही तो कर्त्तव्य है अपने को जानना, पाने की चेष्टा करना। मनुष्य का भगवत्प्राप्ति और सत्यानुसंधान कर्त्तव्य है।

43 **किसी को भी कुछ छोड़ना नहीं पड़ता। कर्म की पूर्णाहुति के साथ-साथ त्याग अपने से ही हो जाता हैं**

44 भगवान के आश्रय में ही दु:ख दूर होता है। मनुष्य के कर्मफल में जो कष्टभोग है वह भगवान की ही कृपा है, कृपा मानकर ग्रहण कर सकने से ही कल्याण की दिशा प्राप्त होती है।

45 यथार्थ में जो आलोक चाहता है भगवान उसे दिए बिना रह नहीं सकते।

46 सत्यस्वरूप भगवान का संग माने ही सत्संग, जिसका आश्रय लेने से सभी दोष दूर हो जाते हैं उनका ही आश्रय करना। वे ही पिता, वे ही माता, बन्धु, सखा सब हैं–यह ज्ञान रखना चाहिए।

47 *गृहस्थ का कर्त्तव्य है सत्संग। जहाँ पर भी भगवत् आलोचना, उनका प्रसंग, भजन कीर्तन हो वहीं जाना। भेदबुद्धि मत रखना, उदार भाव से लेना। तुम्हारे गुरु जगत् के सभी के गुरु हैं। सभी के गुरु तुम्हारे गुरु हैं।*

48 सत्य ही सत्य की रक्षा करता है सैंकड़ों कामों में सैंकड़ों बाधाएं हैं। बाधा की ओर न देखकर यदि हम सत्यपालन की दिशा लेकर कोशिश करें तब किसने क्या कहा, उसकी सत्यव्रतियों को परवाह नहीं होनी चाहिए। जो सत्य बात कहते हैं और सत्य परिवेश में रहेंगे, भगवान स्वयं उनके रक्षक हैं।

49 सब प्रकार के कर्म और भाव के पूर्ण समाधान का नाम समाधि है, ज्ञान–अज्ञान से अतीत अवस्था।

50 स्व–धन लाभ की चेष्टा ही साधना है।

51 तुम लोग भी तो अखण्ड़ शान्ति चाहते हो। पेंशन पाने की आशा से जैसे अखण्ड भाव से काम कर रहे हो, इसी प्रकार सर्वदा अखण्ड भाव से उनका नाम साँस के साथ मिलाकर रखने की कोशिश करना। तभी सब लोग जिस अखण्ड शान्ति को चाहते हैं वह मिलेगी।

52 विश्वरूप के अन्तर्गत भगवान का ही सर्वरूप। स्वरूप प्रकाश की यात्रा में चलना।

53 भगवान की सेवा नियम से करना। सोते समय भी सोचना कि भगवान के चरणों में सिर रखकर सोए हों इस प्रकार दिन–रात्रि उनको लेकर रहना।

54 सर्वावस्था में शान्ति और शान्त रहना आवश्यक है। किसी की जबानी कोई बात सुनकर किसी के प्रति बुरी धारणा बना लेना अनीति का आश्रय लेना है।

55 कहा जाता है कि **मनुष्य इतना पाप कर नहीं सकता जो भगवद् नाम से दूर नहीं होता, जैसे अग्नि का स्फुलिंग जितना जला सकता है उतने पदार्थ तुम संग्रह भी नहीं कर सकते हो।**

56 भगवत् चिन्तन भगवान की ओर जाने की जो कोशिश उसी से समस्त पाप नष्ट कर

देंगें नाश, नाश होगा, स्व प्रकाश होगा।

57 याद रखना उस परमपति को तो तुम देख नहीं पाते, वही परम-पति ही घर-घर में पति रूप में तुम्हारे पास हैं तो। उसी भाव से सेवा करना। और सन्तान सन्तति "बालगोपाल, कुमारी मूर्त्ति" में तुम्हारे पास है। उसी भाव को लेकर सेवा-यत्न उनका करते जाओ।

58 'कृपा' तो वर्षा की तरह हो रही है, उसके ग्रहण के लिए कुछ-कुछ साधन भजन की आवश्यकता है तुम्हारी जितनी शक्ति है उसे काम में लगाओ।

59 अमृत का संधान करो, तुम लोग दरवाजा बन्द करके रहने से उसे देखोगे कैसे? किसी भी उपाय से दरवाजा खोलकर बाहर निकलो- देखोगे, रास्ता दिखाई पड़ेगा।

60 तुम केवल उसी लक्ष्य को पकड़कर चलते रहो देखोगे कोई न कोई आकर रास्ता दिखा जाएगा। तुम लोग केवल जाने की कोशिश करते रहो, जितनी शक्ति, करते जाओ सहायता पाओगे ही।

61 शरीर भी पूजा का बरतन है। तुम लोग इस बात को ध्यान में रखना कि यह पूजा का बरतन है, इसके द्वारा केवल पूजा का ही काम करने की कोशिश करना। तभी देखोगे कि भीतर भी साफ होता जा रहा है।

62 कुछ भी वृथा नहीं जाता, उसका प्राप्य न होने पर उसे मिला कैसे? तुम लोग बाहर से उसे कैसे भी देखो, शायद कृपा पाने के उपयुक्त वह हो भी सकता हैं।

63 सत्संग करो, सत्संग ही धक्का है।

64 **देखो! तुम लोग यदि अपने गुरु को गण्डी (सीमा) में बन्द करके रखो तो ठीक तरह दर्शन नहीं हुआ। जब गुरु को सर्वमय देख सकोगे, वही हुआ गुरु को यथार्थ देखना।**

65 जो जैसा कहो मैं वही मुझे कीड़ा कहो तो मैं वही। खराब कुछ कहो, मैं वही। तुम लोगो की बच्ची कहो, मैं वही।

66 अपने आप को तो दर्शन करना ही चाहिए। अपने को जानने के लिए ही तो इतना साधन भजन।

67 जब कोशिश में हो तब कोशिश करनी ही चाहिए। कब वह समय आएगा कोई नहीं जानता है।

68 तुम लोग काम करते जाओ अवश्य होगा। अवश्य होना पड़ेगा। तुम लोग 'नहीं होगा, नहीं होगा' इस भाव को मन में नहीं लाना। देखो! भगवान को

सोचते-सोचते जैसे तद्भावापन्न हो जाते हैं, इसीलिए 'नहीं होगा, नहीं होगा' यह नहीं सोचना चाहिए, 'होगा-होगा' सोचते-सोचते हो ही जाता है। **संशय आना पाप, तुम लोग चिन्ता क्यों कर रहे हो सभी को होना पड़ेगा।**

69 **वह भी तुम्हारा है एक रूप तुम भी वही। मजे की बात है, कि तुम सोच रहे हो कि तुम उनसे भिन्न हों।**

70 हाँ, अपने घर जाने की तैयारी करो । यह तो श्वासों का घर हैं

71 **तुम लोगो को ड़रने को कुछ नहीं हैं कोशिश और शक्ति है; इसीलिए कहा जाता है 'कोशिश करो' नहीं तो उनके नहीं कराने पर कुछ नहीं होता हैं।**

72 यह पेंशन तो जितने दिन श्वास हैं उतने दिन रहेगी और वह पेंशन तो कभी नष्ट नहीं होगी।

73 शरीर रक्षा क्यों करोगे, उस विषय में लक्ष्य रखना आवश्यक है। यदि यह याद रहे, उनको पुकारेंगे, इसीलिए शरीर रक्षा की आवश्यकता उतना ही करना, भोग के लिए नहीं। भोग तो पशु पक्षी भी करते हैं। ड्यूटी पूरी करते जाओ, उनकी ओर लक्ष्य रखना।

74 सत्य वचन, सत्य व्यवहार की और लक्ष्य रखना। एक दिन शायद ठीक नहीं हुआ, पर अभ्यास करते करते बाद में कठिन नहीं लगेगा, आनन्द मिलेगा।

75 पिता, माता और जिनके पास से हम गूढ़ विषय में थोड़ा भी जान सकते हैं वे ही गुरु। जो रास्ते की खबर थोड़ी सी भी देते हैं वे ही गुरु।

76 बात यह है कि जो बन्द है वही जीव है। देखो ना बन्द पानी में ही गन्ध होती है। स्रोत (प्रवाहित) के जल में कोई गन्ध नहीं होती।

77 **पिताजी, क्यों करने को कहा जाता है जानते हो! तुम लोग जो सोचते हो-"हम करते हैं, हम कर सकते हैं" इसीलिए।**

78 उनके लिए रोने पर उन्हें पाया जाता है जो लोग रोते हैं, उनका संग करो।

79 **उनके ऊपर निर्भर रहना जो है, इसे भी वे ही करायेंगे, तभी तुम रह सकते हो। पुरुष्कार किसे कहते हैं? वे जो कुछ कराते हैं वही पुरुष्कार है।**

80 सब कुछ तो अनन्त है। अन्-अन्त अर्थात् जिसका अन्त नहीं है। इसीलिए कहती हूँ उनका नाम मत छोड़ो मन ही मन लेते रहों किसी को दिखाना या सुनाना नहीं चाहिए।

81 दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर इसे गँवाना नहीं चाहिए। जैसे श्वास चलती है,

उसी प्रकार नाम को भी चलाने की चेष्टा करते रहो।

82 शरीर तो हर क्षण परिवर्तन होता रहा है। पहले छोटे थे, अब बड़े हो गए हो। यह जो गति है इसी को मंगलजनक बनाना चाहिए। नहीं तो आत्महत्या होती है।

83 यह शरीर सर्वदा कहता है कि छोटे-छोटे बच्चे इस शरीर के दोस्त हैं और दोस्तों के माता-पिता इस शरीर के माता-पिता हैं। उन सबसे कभी-कभी कहा जाता है कि देखो, हरि कथा ही कथा है और सब वृथा व्यथा।

84 हरि माने जो दुःख का हरण करते हैं अर्थात् जो अमृतबाण हैं। अमृतबाण माने अमरबाण जो अमृत के मार्ग की ओर ले जाता है। वही हरि कथा ही कथा है, और सब वृथा व्यथा है। जहाँ राम वहीं आराम, जहाँ नहीं राम, वहीं बे आराम, व्यराम।

85 तुम लोग इस मार्ग में आए हो, सभी के साथ मैत्री भाव रखो, साम्यभाव, सत्यभाव रखो, किसी के साथ विरोध मत रखो।

86 संसार संशय का स्थान है।

87 स्वमय-वे तो स्वयं मय होकर हैं, उन्हें व्याकुल होकर जो ठीक-ठीक पुकारता है, तुरन्त वे प्रकाशित होते हैं माँ बच्चे का असली रोना जानती है। उस रोने की आवाज को सुनकर वह सारा काम छोड़कर दौड़ी हुई आती है।

88 जब तक हो सके, नाम जपने का मतलब है उनका संग करना, जिस प्रकार इस संसार के मित्रों का संग करने पर वह सारी बातें तुम्हारे सामने प्रकट कर देता है, उसी प्रकार परमबन्धु का साथ करने पर वह अपना तत्त्व तुम पर प्रकट कर देंगें।

89 समुद्र की लहरों को देखकर क्या तुम नहाना रोक देते हो? उसी लहर में उछलकर अपना स्नान समाप्त करते हो। इसी प्रकार सांसारिक झंझटों तथा बाधाओं के बीच बराबर उन्हें स्मरण करो, जप करते रहने का प्रयत्न करो।

90 "गाय जैसे बछड़े को चाट-चाटकर साफ करती है, ठीक उसी प्रकार भगवान भी अपनी सन्तानों के दोषों को खींच-खींचकर उसे शुद्ध और पवित्र बना देते हैं। तद्बुद्धि से निष्काम सेवा।"

91 देखो, ध्यान की अनुकूलता के लिए ही आसन है, अगर किसी का ध्यान यों ही जम जाए तो आसन की कोई जरुरत नहीं। आसन में अगर ध्यान नहीं

जमता, शरीर की ओर, आसन की ओर ख्याल रहता है, तब फायदा क्या हुआ? असली लक्ष्य तो है उनकी और मन लगाना, वह चाहे जैसे भी हो, वही करना।

92 आनन्द सागर–अपने को पाना भगवान को पाना, परम पथ ही असल पथ और सब विपथ, विपथ में जाने पर विपद् होगी। और स्वरूप प्रकाश–वही असल पथ। भगवान को जानने का वही पथ।

93 सबसे पहले जानने की कोशिश करो उनके साथ क्या सम्बंध है इसके अनुसंधान का प्रयास करो तब ही तो कहने के अधिकारी होंगे कि "वे जो कराते हैं वही कर रहा हूँ" अभी तो उनके साथ परिचय भी नहीं है, पर, वे–वे करते करते उनके अनुसंधान का भाव जाग भी सकता है।

94 सदालोचना क्यों की जाती है? आलोचना करके अलोचन होने के लिए ही तो जब तक दृष्टि तब तक सृष्टि।

95 परम जहाँ पर प्रेम वहीं पर।

96 मन को उनके चरणों में लगाकर रखने की कोशिश करना। विश्वमंगल करुणासागर भगवान की कृपा हर समय ही वर्षित हो रही है। हर समय मंगलचिन्ता करना कर्त्तव्य है। मंगल माने भगवत् प्रकाश की जो आशा, पूर्णानन्द, पूर्णप्रकाश जो है।

97 परमार्थ पथ में सहनशक्तियुक्त, धैर्यशाली, स्थिर, धीर–गम्भीर स्वयं को पाने की क्रिया में सतत् व्रती रह सकने से लहर आने से भी छू नहीं सकती। वही स्थिति होने की चेष्टा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

98 फूल में जैसे बीज खोलने से ही दिखाई पड़ता है, बीज में जैसे वृक्ष है इसी प्रकार तुम्हारे में भी वे ही हैं।

99 प्रार्थना साधना का विशेष अंग है, प्रार्थना की शक्ति अमोघ है, एवं प्रार्थना में जीव और जगत् के प्राण अवस्थित हैं। जब जो प्राण में आए उन्हें निवेदित करना, साथ ही सरल और व्याकुल होकर उनके प्रति शरणागति की प्रार्थना करना।

100 भगवान को छोड़कर तुम कहाँ? यह झलक किसी भी रूप में किसी प्रकार प्रकाशित होती ही है।

101 **महायोग शक्ति सबमें निहित हैं जब तक वह महाप्रकाश नहीं होता तब तक वह अविराम अविरोध महादर्शन कहाँ?**